



आचार्य चित्सुख एवं उनका द्रव्यलक्षण खण्डन

राजेन्द्र कुमार

पूर्व सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

विवेकानन्द महाविद्यालय

दिल्ली, भारत

शोध संक्षेप

अद्वैत वेदान्त परंपरा में अनेक ऐसे विद्वान् हुए हैं जिनसे आज भी समाज एक प्रकार से अनभिज्ञ है। इन विद्वानों ने न केवल वेदान्त परंपरा का अनुगमन किया अपितु वेदान्त दर्शन के सिद्धान्तों का अवलोकन एवं अध्ययन करते हुए अपने विचारों को ग्रन्थ में उपनिबद्ध भी किया है। किन्तु यथोचित अन्वेषण न किये जाने से आज भी ये नाम लुप्त ही हैं। अतः इनकी रचनाएँ भी दर्शन जगत में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपेण किसी के ज्ञान एवं लेखनी का विषय नहीं बनी हैं। फलतः यह आवश्यकता है कि इन रचनाओं को भी जिज्ञासुओं के आलोक में लाना अत्यन्तावश्यक है। आचार्य चित्सुख भी एक ऐसा ही व्यक्तित्व है जिन पर वर्तमान में विद्वानों के द्वारा चिन्तन का अभाव ही रहा है तथा इनके विचारों से अद्वैत-वेदान्त दर्शन भी अपरिचित ही रहा है। इन्हीं चित्सुखाचार्य और इनके द्रव्य संबंधी विचार को इस शोधपत्र में उद्धृत किया जाएगा।

प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक संप्रदायों में अद्वैत-वेदान्त दर्शन के तीन सोपान माने जाते हैं, जिन्हें प्रस्थानत्रयी के नाम से अभिहित किया जाता है। जिसका आरंभ आचार्य गौड़पाद से माना जाता है, जिन्होंने माण्डुक्योपनिषद्कारिका में सर्वप्रथम इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। तदोपरान्त शंकराचार्य ने इसको पुष्पित एवं पल्लवित किया। तत्पश्चात् इस दर्शन का स्वर्णिम युग आरंभ हो गया जिसमें वाचस्पति मिश्र एवं प्रकाशत्मायति इत्यादि विद्वानों ने शारीरकभाष्य पर अपनी टीकाओं को लिख कर अद्वैत-वेदान्त दर्शन को दो प्रस्थानों में विभाजित कर दिया, भामती प्रस्थान एवं विवरण प्रस्थान। इस अद्वैत-वेदान्त रूपी वृक्ष पर उदित इन दो शाखाओं विवरण एवं भामती को अनेक विद्वानों ने अपने ग्रन्थ रूपी पुष्पों से गुम्फित एवं पल्लवित कर दिया। उन्हीं

में से एक चित्सुखाचार्य हैं, जिनके स्वतन्त्र ग्रन्थ तत्वप्रदीपिका ग्रन्थ है, जिस पर प्रत्यक्स्वरूप ने अपनी प्रौढ टीका नयनप्रसादिनी लिखी।

चित्सुख परिचय

नैयायिक श्री उदयनाचार्य ने अपनी लक्षणावली का समय 984 ई- बताया है। श्रीधराचार्य अपनी 1 न्यायकन्दली के अन्त में निर्माण काल 991 ई- बताते हैं। इन दोनों का खण्डन-खण्डखाद्य में महाकवि हर्ष ने 12वीं शती में वर्णन किया है। और श्रीहर्ष का स्पष्ट उल्लेख चित्सुखाचार्य ने किया है तथा उन्होंने खण्डनखण्डखाद्य पर व्याख्या भी की है। जयतीर्थ जिनका समय 1365-1388 ई- है, वे चित्सुखाचार्य का उल्लेख अपनी 2 वादावली में किया है। अतः इस आधार पर चित्सुखाचार्य का समय 13वीं शती स्थिर होता है। चित्सुखाचार्य के जन्मस्थान प्रमाणों के आधार पर बंगला भाषा के वेदान्तदर्शनेर इतिहास

में लिखा है कि ये उत्तर भारत के निवासी हैं किन्तु योगेन्द्रनाथ तर्क तीर्थ के अनुसार चित्सुख ने शेष समय कामकोठी मठ में बिताया इसलिए इनका दक्षिण भारत में होने की संभावना अधिक है। इनकी दर्जन से अधिक रचनाएँ हैं किन्तु उनका स्वतन्त्र चित्सुखी है जिसे तत्वप्रदीपिका भी कहते हैं। चित्सुखी चार अध्याय में विभक्त है, जिसके द्वितीयाध्याय में न्याय-वैशेषिक के सिद्धान्तों का खण्डन है। सर्वप्रथम पदार्थों का क्रमशः खण्डन करते हुए द्रव्य का खण्डन करते हैं। द्रव्य लक्षण का खण्डन न्याय-वैशेषिक भेदवादी दर्शन है तथा अद्वैतवेदान्त अभेदवादी दर्शन है। चित्सुख अद्वैत-वेदान्ती है, इसलिए वे अभेद सिद्धि हेतु भेद का निराकरण करने के लिए न्याय-वैशेषिक के सप्तपदार्थ का खण्डन करते हैं। जिसमें क्रमशः द्रव्य का निराकरण हेतु द्रव्य के लक्षण का खण्डन करते हैं जो संवाद रूपेण प्रस्तुत है-

वेदान्ती - यह जो नैयायिक ने द्रव्य का लक्षण किया है कि '3 गुणाश्रयः द्रव्यम्' यह ठीक नहीं है, क्योंकि इसमें अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष है- अव्याप्ति - आपका यह लक्षण प्रथम क्षण में उत्पन्ना घट पर घटित नहीं होता इसलिए यह लक्षण अव्याप्ति दोष से युक्त है। अर्थात् नैयायिक प्रथमकालीन घट को निर्गुण मानते हैं, इसलिए यह लक्षण उस क्षण में घटित नहीं होता।

अतिव्याप्ति - 'चतुर्विंशति गुणाः' पद में संख्या नामक गुण होने से यह लक्षण द्रव्य के साथ गुणमें भी घटित हो जाने से इसमें अतिव्याप्ति दोष है। अर्थात् नैयायिक २४ गुणों को बताने के लिए 'चतुर्विंशति' शब्द का प्रयोग किया है इससे जो उनके २४ गुण हैं वह संख्या नामक गुण में

चले जाते हैं। इससे जो लक्षण केवल द्रव्य के लिए बना था वह गुण पर भी चला जाएगा।

नैयायिक - 4 यह जो आपको संख्या नामक गुण की प्रतीति हो रही है वह भ्रम है। वास्तव में ऐसा नहीं होता।

वेदान्ती - 5 जिस प्रकार द्रव्यादि में संख्या का कोई बाधक नहीं है अर्थात् जैसे शीत जल में अग्नि की उष्णता बाधक है उसी प्रकार गुण में संख्या का कोई बाधक नहीं है इसीलिए गुण में संख्या की प्रतीति भ्रम नहीं है।

नैयायिक - चलो मान लिया किन्तु यह दोष तो सीधे मार्ग पर चलने वाले प्राचीन नैयायिकों पर लगता है हम टेढ़े मार्ग पर चलने वाले नव्य नैयायिकों पर नहीं।

वेदान्ती - यह दोष विभिषिका ठीक नहीं है इसे अच्छी प्रकार से कहें। अर्थात् अपनी बात को अच्छे से कहें।

नैयायिक - 6 हम तो द्रव्य का लक्षण करते हैं- "गुणवत्त्वात्यन्ताभावनधिकरणता" अर्थात् गुणवत्त्व के अत्यन्ताभाव का अधिकरण न होना ही 'द्रव्य' है तो इससे न तो अव्याप्ति होगी और न ही अतिव्याप्ति। क्योंकि ऐसा हाने पर ही हम केवल उसे गुण नहीं मानेंगे जिसमें गुण का त्रैकालिक अभाव हो।

वेदान्ती - 7 यह भी ठीक नहीं क्योंकि यह भी अत्यन्ताभाव में अतिव्याप्ति है, उसमें भी गुणवत्त्व के अत्यन्ताभाव का अनधिकरण देखा जाता है। इसके अतिरिक्त अत्यन्ताभाव में भी अत्यन्ताभाव रह नहीं सकता क्योंकि दोनों एक ही हैं और भेद करने के लिए आधार-आधेयता का भेद होना आवश्यक है।

नैयायिक - 8 अत्यन्ताभाव के अनेक होने से अत्यन्ताभाव में भी अत्यन्ताभाव रह सकता है।

वेदान्ती - यह भी ठीक नहीं है क्योंकि यह मानने से भी 9विकल्पासहत्व है अर्थात् सभी विकल्प असंभव हो जायेंगे-

यदि आप “एकैकगुणवत्त्वात्यन्ताभावनधिकरणता” लक्षण कहें तो जितने भी उससे अन्य गुण बचेंगे वे गुणवत्त्व के अत्यन्ताभाव का अधिकरण हो जायेंगे।

और यदि “सर्वगुणवत्त्वात्यन्ताभावनधिकरणता” यह कहें तो भी ठीक नहीं क्योंकि सर्वगुणवत्त्व का अत्यन्ताभाव उसी पदार्थ में रहेगा जिसमें सभी गुण रहते हैं और ऐसा कोई पदार्थ देखा नहीं जाता।

10 सभी द्रव्यों में चौबीस गुण व्याप्त हो सकते हैं किन्तु एक-एक द्रव्य में यह २४ गुण व्याप्त नहीं होंगे तो यहाँ अव्याप्ति कैसे नहीं होगी।

नैयायिक - 11 इन २४ गुणों के अन्यतम गुणवत्त्व के अत्यन्ताभाव का अधिकरण न होना लक्षण कहें तो इसका निवारण हो सकता है।

वेदान्ती - प्रथम तो अन्यतम शब्द से क्या अभिप्राय है, यदि इसे मान भी लें फिर भी रूपादि के समान वह भी एक-एक का अथवा सभी के गुणवत्त्व के अत्यन्ताभाव का अनधिकरण अभिहित है।

12 पहले के समान ही अतिव्यप्ति होगा।

क्या इस टेडे लक्षण में भी गुणों में संख्या और पृथक्त्व की प्रतीति से अतिव्याप्ति दोष कैसे नहीं है।

प्रशस्तपाद भाष्य कोई मनु वचन नहीं जिसके द्वारा गुणादियों की निर्गुणता प्रमाणित हो जाए।

नैयायिक - 13 गुणों में भी संख्या और पृथक्त्व नामक गुण मानने पर अनवस्था होती है इसीलिए गुणों में संख्या और पृथक्त्व की प्रतीति भ्रान्ति है।

वेदान्ती - ऐसा नहीं मानना चाहिए क्योंकि 14 रूपादियों में संख्या और पृथक्त्व मानने पर भी संख्या और पृथक्त्व में संख्या और पृथक्त्व न मानने से अनवस्था का परिहार हो जाता है। जैसा आप नैयायिक करते हैं कि संयोग संबंध में समवायि को मानकर भी समवायि में संयोग न मानकर अनवस्था का परिहार करते हैं।

नैयायिक - ऐसा नहीं है हमारे यहाँ तो 15द्रव्यगत् संख्या पृथक्त्व से ही तदेकार्थ समवाय लक्षण प्रत्यासत्य अर्थात् एक अर्थ में समवेत होने से गुणादि में भी संख्या और पृथक्त्व का व्यवहार हो जाता है।

वेदान्ती - नहीं यह कल्पना व्यर्थ है क्योंकि इसका 16विपर्यय भी सुखपूर्वक कहा जा सकता है। अर्थात् इसके विपरीत कथन भी कहा जा सकता है कि गुणगत संख्या पृथक्त्व से ही तदेकार्थ समवाय लक्षण प्रत्यासत्या होने से द्रव्यादि में भी संख्या और पृथक्त्व का व्यवहार हो जाता है।

नैयायिक - 17 यहाँ पर गुण के २४ होने तथा द्रव्य के एक होने पर कैसे विपरीत कल्पना करोगे ?

वेदान्ती - 18 तो तुम अपना पक्ष छोड़कर इस ओर ध्यान क्यों नहीं देते कि ९ द्रव्यों को मिलाकर उसमें २४ गुण होते हैं इससे विपरीत कल्पना प्रबल होती है।

नैयायिक - 19 यहाँ २४ गुण का जो प्रयोग है वह अवान्तर द्रव्य संख्या संभव निमित्तक है, अर्थात् भिन्न-भिन्न द्रव्यों को मिलाकर उनमें २४ गुण की संख्या हो सकती है। अतः गुणों में गुण नहीं रहते।

वेदान्ती - तो जिसप्रकार द्रव्य अनन्त होते हैं उसीप्रकार गुणों को अनन्त क्यों नहीं मान लेते। यदि आप द्रव्य में गुण और कर्म मानते हैं द्रव्य

में रहने वाली सत्ता जाति तथा गुण और कर्म में रहने वाली सत्ता जाति से सत्ता जाति में सत्ता जाति होने से यह कल्पना व्यर्थ हो जाएगी। इस गुणवत्त्वात्यन्ताभावानधिकरणता लक्षण के व्यर्थ होने से आपका यह लक्षण “गुणाश्रय द्रव्यम्” यह लक्षण व्यर्थ है।

प्रथम क्षण में उत्पन्न घट में गुणादि की उत्पत्ति न होने से वहाँ समवायिकारणत्व नहीं रहता है। अतः अव्याप्ति है। और इस द्रव्य का लक्षण हम “समवायातन्ताभाव अनधिकरणता” कर लेंगे तो यह भी समवायिकारणत्व के अत्यन्ताभाव में व्याप्त हो जाएगा। तथा रूपादि में भी संख्या पृथक्त्व समवायि होने से वहाँ अतिव्याप्ति है।

समालोचना

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि चित्सुखाचार्य ने न्याय-वैशेषिक के गुण पदार्थ का खण्डन अत्यन्त तर्कपूर्ण ढंग से किया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो चित्सुख वेदान्त नहीं अपितु न्याय-वैशेषिक सम्प्रदाय के हों। यही कारण है कि नयनप्रसादिनी का अवलोकन करते ही इसका पाठक वेदान्त के अतिरिक्त वैशेषिक दर्शन के मनतव्यों का

मनन अनायास ही कर लेता है। इस ग्रन्थ में न्याय-वैशेषिक के सिद्धान्तों का खण्डन तो किया गया है, जो दार्शनिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं किन्तु उन मतों उल्लेख चित्सुख आचार्य ने आदर एवं निष्ठापूर्वक किया है, जो उनके ग्रन्थ को प्रबल बनाता है। इस टीका में कुछ स्थानों पर चित्सुखाचार्य ने लक्षण को उद्धृत कर उसका पूर्णतः विश्लेषण नहीं किया है, किन्तु उसका यथास्थान प्रयोग न होने से वह स्वतः ही दोषयुक्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त

चित्सुखाचार्य ने प्रकरण में उस प्रकरण के सार को एक श्लोक में संग्रहित करते हैं, जहाँ वह छायावादी कवि के रूप में सामने आते हैं।

निष्कर्ष

चित्सुखी के प्रबल पक्ष इसकी सार्थकता को सिद्ध करते हैं। अद्वैत-वेदान्त के अतिरिक्त न्याय-वैशेषिक के सिद्धान्तों का प्रतिपादन भारतीय दर्शन के हेतु पुष्पराग रत्न के तुल्य है। तत्वप्रदीपिका की शैली अत्यन्त तर्कपूर्ण है एवं जटिल है जिसे ग्रहण करने हेतु दर्शन एवं व्याकरण का ज्ञान होना अन्यन्तावश्यक है, किन्तु उसे कठिनातापूर्वक ग्रहण करने में नरियल के समान आनन्द आता है।

ग्रन्थगत सन्दर्भ

- 1 अधिकदशोत्तरनवशतकशकाब्दे न्यायकन्दली रचिता [न्यायकन्दली, पृष्ठ-788
- 2 चित्सुखेनापरीक्षव्यवहारयोग्या (वादावली, पृष्ठ-178)
- 3 तत्र तावद्गुणश्रयो द्रव्यमित्यलक्षणं यतः-
अव्याप्तेरप्यतिव्याप्तेर्द्रव्यं नैव गुणाश्रयः। आद्ये क्षणे गुणाभावादगुणादावपि वीक्षणात्॥ (चित्सुखी, पृ-176)
- 4 न च संख्यावत्वप्रतीतिर्विभ्रमः।(चित्सुखी, पृ-176)
- 5 नवैव द्रव्याणीत्यादाविव बाधकादर्शनात्। (चित्सुखी, पृ-176)
- 6 यतो गुणवत्त्वात्यन्ताभावानधिकरणतामेव गुणाधिकाणतामाचक्षमहे तेन नाव्याप्तिर्नाप्यतिव्याप्तिः। (चित्सुखी, पृ-176)
- 7 तत्रैवात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तेः। (चित्सुखी, पृ-176)8
अथानेकत्वादत्यन्ताभावानामत्यन्ताभावेऽप्यत्यन्ताभावो स्ति। (चित्सुखी, पृ-176)
- 9 मैवम्। विकल्पासहत्वात्।(चित्सुखी, पृ-176)
- 10 सति हि सर्वगुणाधिकरणे सर्वगुणात्यन्ताभावानधिकरणत्वस्य सर्वस्मिन्नसम्भवात्। (चित्सुखी, पृ-176)
- 11 अथ चतुर्विंशतिगुणानामन्यतमगुणवत वात्यन्ताभावानधिकरणता विवक्षिता। (चित्सुखी, पृ-177)



- 12 न च पूर्वाभिहिताव्याप्तिदोषस्य तदवस्थत्वात्।
(चित्सुखी, पृ-177)
- 13 गुणेष्वपि गुणाभ्युपगमेऽनवस्थाप्रसत्ते। (चित्सुखी,
पृ-177)
- 14 रूपादिषु तदभ्युपागमेपि
संख्यापृथक्त्वयोस्संख्यापृथक्त्वान्तरानभ्युपगमेनैवानव
स्थापरिहारात्। (चित्सुखी, पृ-177)
- 15 तदेकार्थसमवायलक्षणप्रत्यासत्यागुणादिष्वपि
तद्व्यवहारः। (चित्सुखी, पृ-177)
- 16 विपर्ययस्यापि सुवचत्वात्। (चित्सुखी, पृ-177)
- 17 अथ गुणानामनेकत्वेपि द्रव्यस्यैकत्वदर्शनात्कथं
गुणसंख्यया द्रव्ये तद्व्यवहारः। (चित्सुखी, पृ-178)
- 18 नवैव द्रव्याणि चतुर्विंशतिर्गुणा इति संख्यावैषम्यात्।
(चित्सुखी, पृ-178)
- 19 अथावन्तरद्रव्यसंख्यासंभावनिमित्तोयं व्यवहारः।
(चित्सुखी, पृ-178)

सन्दर्भ ग्रन्थ

- 1 तत्वप्रदीपिका, चित्सुखमुनि, स्वामीयोगीन्द्रानन्द,
चौखम्बाविद्याभवन, वाराणसी, 2005, तृतीय संस्करण
का पुनःमुद्रित संस्करण-
- 2 नयनप्रसादिनी, प्रत्यक्स्वरूप, स्वामीयोगीन्द्रानन्द,
चौखम्बाविद्याभवन, वाराणसी, 2005, तृतीय संस्करण
का पुनःमुद्रित संस्करण-
- 3 न्यायकन्दली श्रीधराचार्य, श्रीदुर्गापर शर्मा,
सम्पूर्णानन्द, वाराणसी, 1997- _
- 4 वादावली जयतीर्थ, षड्दर्शनसमुच्चय प्रकाशन,
वाराणसी, 1985-